ज्ञानतत्व अंक 286 में मैंने कुछ निष्कर्ष लिखे थे। अनेक पाठकों को वे निष्कर्ष अस्वाभाविक लगे। मैं भी मानता हूँ कि वे निष्कर्ष लिक से हटकर थे। फिर भी चूँकि वे मेरे चिंतन से निकले निष्कर्ष थे, इसलिए मैंने उसे यथावत प्रकाशित कर दिया। अनेक पाठकों ने यह कहकर इनका विरोध किया कि दुनिया में अन्य कोई ऐसी बात नहीं कह रहा है। मेरा ऐसा मानना है कि दुनिया भौतिक विकास तो बहुत तेज गति से कर रही है, किन्तु नैतिक या चारित्रिक पतन भी बहुत तेज गति से हो रहा है। मुझे ऐसा लगता है कि भौतिक उन्नति के साथ नैतिक पतन होना आवश्यक नही है। इसलिए नैतिक पतन के लिए कोई न कोई ऐसे कारण अवश्य होंगे, जिन्हें समझने में हम अब तक असफल रहे और जब मैं उन कारणों पर गंभीर विचार–मंथन किया तो उस विचार–मंथन के माध्यम से उपरोक्त सभी निष्कर्ष निकले। मैंने उन निष्कर्षों का अत्यन्त संक्षिप्त रूप आपके सामने 286 अंक में रखा है। उसका थोडा सा विस्तार इस अंक में दे रहें है जिससे आपको समझने में सुविधा होगी।

अभी दुनिया में और विशेषकर भारत में दो विचार धाराएँ एक–दूसरे के विपरीत काम कर रही है। पहली वह जो यह मानते हैं कि जो कुछ प्राचीन है वह सब ठीक है और उसमे संशोधन की कोई आवश्यकता नही है। ऐसे लोग किसी भी संशोधन का विरोध करते हैं तथा किसी न किसी माध्यम से उस प्राचीन धारणा का प्रचार करते है। ऐसे लोग पश्चिम से आए हुए हर विचार का ऑख मूंदकर विरोध करते हैं। ऐसे लोगों में संघ–परिवार तथा ईस्लामिक जगत सबसे आगे रहता है। दूसरे प्रकार के वे लोग हैं, जो हर प्राचीन चिंतन का ऑख मूंदकर विरोध करते हैं। वे अच्छी से अच्छी पुरानी बात पर तर्क खोज लेते हैं। ऐसे लोगों को पुरानी कोई बात अच्छी नही लगती। ऐसे लोगों में कम्यूनिष्ट सबसे आगे रहते हैं। ये दोनो समूह यह नही सोचते, कि कोई बात जिस समय कही गई थी, चाहे वह पाणिनी ने कही हो, चाहे चाणक्य ने कही हो अथवा मार्क्स ने। किन्तु देश, काल परिस्थिति अनुसार उस पर विचार करके ही वह समाज को देनी चाहिए। मैं नही कहता कि पाणिनी अथवा मार्क्स के विचार गलत थे, किन्तु मैं यह कह सकता हूँ कि वर्तमान परिस्थिति को देखते हुए वे गलत भी हो सकते हैं और सही भी। इस दृष्टि से ही मैंने अपने चिंतन के आधार पर यह पुस्तक लिखी थी और उस चिंतन को आगे बढाते हुए कुछ और स्पष्ट कर रहा हूँ।

1.–परिभाषाएँ–(१) संविधान :–राज्य के अधिकतम तथा समाज के न्यूनतम अधिकारों की सीमाएँ निश्चित करने वाले दस्तावेज को संविधान कहते है। दूसरी ओर राज्य के न्यूनतम तथा व्यक्ति के अधिकतम अधिकारों की सीमाएँ, निश्चित करने वाला दस्तावेज कानून कहा जाता है।

(२) प्रत्येक ईकाई को ईकाई गत निर्णय की अधिकतम स्वतंत्रता को स्वराज्य कहते हैं। व्यक्ति को व्यक्तिगत, परिवार को पारिवारिक, गॉव को गॉव संबंधी, जिले को जिला संबंधी, प्रदेश को प्रदेश संबंधी, राष्ट्र को राष्ट्र संबंधी तथा समाज को समाज संबंधी निर्णय की स्वतंत्रता स्वराज्य में होती है।

(3) किसी व्यक्ति के मूल अधिकारों का उल्लंघन अपराध होता है। संवैधानिक अधिकारों का उल्लंघन गैर कानूनी होता है, तथा सामाजिक अधिकारों का उल्लंघन अनैतिक होता है।

(4) किसी औसत व्यक्ति या परिवार की क्रय शक्ति की अपेक्षा औसत वस्तुओं का मूल्य अधिक हो जाता है, तब उसे महंगाई कहते हैं। कुल आबादी के 33 प्रतिशत निम्न वर्ग की क्रय शक्ति की अपेक्षा उसके उपयोग की वस्तुएँ महॅगी हो जाती है, तो उसे महॅगाई का दुःष्प्रभाव कहते हैं।

(5) बेरोजगारी– किसी स्थापित व्यवस्था द्वारा घोषित न्यूनतम श्रम मूल्य पर योग्यतानुसार कार्य का अभाव बेरोजगारी माना जाता है।

(6) किसी स्थापित व्यवस्था द्वारा घोषित न्यूनतम स्तर से नीचे जीने वालो को समान सुविधा तथा उपर जीने वालो को समान स्वतंत्रता समानता की परिभाषा मानी जाती है।

(7) प्रत्येक नागरिक को समान संवैधानिक अधिकार, समान नागरिक संहिता मानी जाती है। समान नागरिक संहिता, समान आचार संहिता से बिलकुल विपरित है। समान नागरिक संहिता में धर्म, जाति, भाषा, लिंग, उम्र, क्षेत्रियता, गरीब–अमीर, उत्पादक–उपभोक्ता आदि का भेद नही होता।

(8) धर्म–किसी व्यक्ति द्वारा किसी अन्य व्यक्ति के प्रति किये गये निःस्वार्थ कार्य को धर्म कहते है। धर्म व्यक्तिगत होता है, संगठन से उसका कोई संबंध नही।

(9) मौलिक अधिकार–किसी व्यक्ति को जन्म से ही प्राप्त वे प्राकृतिक अधिकार जिनमें राज्य सहित कोई भी अन्य किसी भी परिस्थिति में तब तक कोई कटौती न कर सके, जब तक उस व्यक्ति ने किसी अन्य के वैसे ही प्राकृतिक अधिकारों में कोई कटौती न की हो, उसे मौलिक अधिकार कहते हैं।

मौलिक अधिकार चार ही होते हैं–1. जीवन का अधिकार 2. अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता 3. सम्पति 4. स्वनिर्णय। संविधान मौलिक अधिकार देता नही बल्कि इन चार अधिकारों की सुरक्षा की गॉरंटी मात्र देता है। मौलिक अधिकार व्यक्ति के प्रकृति प्रदत्त होते हैं, तथा नागरिक को तब मिलते हैं जब संविधान ऐसी गारंटी देता है।

(2) समस्याएँ–मूलतः सुरक्षा और न्याय राज्य का दायित्व होता है, तथा अन्य सभी प्रकार के कार्य उसके स्वैच्छिक कर्तव्य। भारत में धूर्त लोग सुरक्षा और न्याय की अपेक्षा शिक्षा, स्वास्थ्य, धार्मिक, जातीय असमानता, बेरोजगारी आदि को राज्य का दायित्व बताकर राज्य को विचलित होने के लिए प्रेरित करतें हैं तथा राज्य को भी वैसे ही कार्यो में मजा आता है।

(3) महिलाएँ–कुछ गिनी–चुनी महिलाओं को छोडकर बाकी महिलाएँ परिवार का अंग होती है और परिवार में सम्मिलित होने के बाद उनके सभी प्रकार के सामाजिक अथवा संवैधानिक अधिकार संयुक्त हो जाते हैं। मूल अधिकारों को छोडकर उन्हें अन्य कोई भी अधिकार व्यक्तिगत नही होता।

प्राचीन समय में महिलाओं को कुछ विशेषाधिकार देकर उनके समान अधिकारों में कटौती की जाती थी, जिसका उस समय दुरूपयोग हुआ और उस दुरूपयोग की प्रकृति को आज ठीक करने की आवश्यकता है।

{1} परिवार के प्रत्येक सदस्य को परिवार की सम्पति में समान अधिकार दे देना चाहिए।

{2} परिवार में मुखिया का चयन परिवार के सभी सदस्यों द्वारा गुप्त मतदान प्रणाली से करना बाध्यकारी होना चाहिए।

{3} परिवार के किसी भी सदस्य को परिवार छोडते समय अपना हिस्सा ले जाने की छूट होनी चाहिए जिसे वह यथावत नये परिवार में सम्मिलित करेगा।

{4} परिवार को यह अधिकार होना चाहिए कि वह परिवार के किसी भी सदस्य को कभी भी बिना कारण बताये परिवार से अलग कर सके। साथ–साथ परिवार के किसी भी सदस्य को यह भी अधिकार होना चाहिए कि वह कभी भी बिना कारण बताये परिवार से अलग हो सके।

{5} परिवार में नये शामिल होने वाले सदस्य को परिवार, बिना कारण बताये शामिल होने से रोक सकता है।

{6} यदि परिवार का कोई सदस्य परिवार की सहमति से किसी अन्य परिवार में जाकर अतिथि के रूप मे रहता है तो उसकी कमाई पर तब तक उसका कोई अधिकार नही होगा, जब तक कोई विशेष अनुबंध नही हुआ हो।

{7} परिवार के सदस्यों के बीच रक्त संबंध की अनिवार्यता समाप्त कर देनी चाहिए। प्रत्येक परिवार में एक परिवार प्रमुख चुना जाए, जो उस परिवार का सर्वाधिक उम्र का हो तथा उसकी भूमिका राष्ट्रपति से अधिक न हो।

{8} **परिवार की परिभाषा**–संयुक्त सम्पति तथा संयुक्त उत्तर दायित्व के आधार पर एक साथ रहने के लिए सहमत व्यक्तियों के समूह को परिवार कहते हैं।

{9} परिवार समाज व्यवस्था का संगठित स्वरूप है।

{10} अपने पारिवारिक संगठन की सहमति के बिना कोई भी महिला या पुरूष किसी अन्य संगठन का सदस्य नही बन सकता।

{11} स्त्री हो या पुरूष दोनो के अंदर काम इच्छा की भूख समान होती है। विवाह लडके और लडकी की स्वीकृति, परिवार की सहमति तथा समाज की अनुमति से होते हैं। इसमे लडके और लडकी की स्वीकृति अनिवार्य तत्व है, परिवार की स्वीकृति और समाज की अनुमति अनिवार्य नही है। किन्तु परिवार को अधिकार है कि वह अपने उच्चश्रृंखल सदस्य को अलग कर दे। समाज को भी अधिकार है कि ऐसे उच्चश्रृंखल परिवार को समाज व्यवस्था से अलग कर दे। किन्तु परिवार या समाज किसी भी परिस्थिति में ऐसे सदस्य के मौलिक अधिकारों का उल्लघंन नही कर सकता।

{12} विवाह के समय वर पक्ष के लोग वर की अपेक्षा कम उम्र, कम योग्यता की लडकी खोजते हैं। दूसरी ओर कन्या पक्ष के लोग इसके ठीक विपरीत अधिक योग्य वर। यह व्यवस्था है। महिलाओं के पक्ष में आवाज उठाने वाले पुरूष या महिलाओं द्वारा अपनी लडकियों के विवाह में भी ऐसी ही प्रणाली अपनाई जाती है। आज के बाद या तो ऐसे लोगों को इस प्रणाली को उलट देना चाहिए या महिला अधिकारों की आवाज उठानी बन्द कर देनी चाहिए।

{13} महिला और पुरूष का अनुपात लगातार महिलाओं के पक्ष में गिर रहा है। अनेक परिवारों में लडके कुँवारे रह रहे हैं। सम्पन्न परिवारों के लोग पैसे देकर लडकियॉ ला रहे हैं। आर्थिक दृष्टि से गरीब घरों की लडकियॉ सम्पन्न घरो में जा रही है। फिर भी पाखंडी लोग दहेज का हल्ला कर रहे हैं। यदि आप बासमती चावल खाना चाहते हैं तो, बासमती चावल का मूल्य देने में आपको कष्ट क्यों हो रहा है ?

{14} महिलाओं का अनुपात बदलने से समाज में महिला और पुरूष के बीच की असमानता घटी है और महिलाएँ परिवार में भी कुछ सशक्त हुई हैं। यदि यह अनुपात थोडा सा और गिर जाए तो महिला सशक्तिकरण की प्रकिया अपने आप पूरी हो जाएगी।

{15} धूर्त महिलाओं ने महिला आरक्षण का नारा इसलिए बुलंद किया है कि वे पति–पत्नी मिलकर सारी राजनैतिक अथवा सरकारी नौकरी की माल मलाई अपने परिवार तक समेट लें। इस महिला आरक्षण का श्रम प्रधान महिलाओं को क्या लाभ होगा ? क्यों नही आरक्षण के साथ एक और धारा जोड दी जाए, कि आरक्षण का लाभ उन्हीं महिलाओं को मिलेगा जिन परिवारों का कोई सदस्य किसी राजनैतिक या सरकारी नौकरी में नही होगा।

{16} पश्चिमी जगत में परिवार व्यवस्था को संवैधानिक मान्यता प्राप्त नही है। वहॉ द्विस्तरीय व्यवस्था है–व्यक्ति और समाज। ईस्लामिक देशों में व्यक्ति और परिवार तो है, किन्तु समाज नही है और समाज का स्थान धर्म ने ले लिया है। भारत में परिवार व्यवस्था है और त्रिस्तरीय व्यवस्था है–व्यक्ति, परिवार और समाज। जब भारत गुलाम हुआ तब मुसलमानों ने समाज के स्थान पर धर्म की व्यवस्था घुसाई और व्यक्ति के मूल अधिकार समाप्त कर दिये। जब मुसलमानों को हटाकर अंग्रेज आये तो इन्होनें परिवार व्यवस्था और धर्म व्यवस्था को हटाकर व्यक्ति और समाज व्यवस्था लागू कर दी। जब इनकी जगह अंम्बेडकर, नेहरू सरीखे काले अंग्रेंज आये तो इन्होनें परिवार व्यवस्था और समाज व्यवस्था को हटा दिया और उसकी जगह जाति, धर्म आदि को मान्यता दे दी।

{17} बन्द समाज व्यवस्था और खुली समाज व्यवस्था का एक साथ ऑकलन करके ही नई समाज व्यवस्था बननी चाहिए।

{18} सेक्स एक प्राकृतिक भूख है, उस पर किसी भी प्रकार का कोई अंकुश मूल अधिकारों का उल्लंघन है। सहमत सेक्स को अनुशासन से ही रोका जा सकता है, शासन से नही। नासमझ पुरातन पंथी जो या तो शिथिल इंन्द्रिय हो गये हैं या किसी अन्य आधार पर दकियानूसी सोच रखते हैं वे लोग सहमत सेक्स को भी अनावश्यक रोकने का प्रयास करते हैं।

{19} महिला और पुरूष के बीच समाज में दूरी घटाना या बढाना उनकी परिवारिक सहमति पर निर्भर करता है किसी सिन्द्धात पर नही। नासमझ लोग एक ओर तो सहशिक्षा या साथ में नौकरी को प्रोत्साहन देकर इस दूरी को घटाते रहने में निरन्तर लगे रहते हैं, तो दूसरी ओर यही लोग वैश्या वृत्ति रोकने, बार बालाओं को रोकने, शादी की उम्र बढाने, सहमत सेक्स पर भी प्रतिबंध लगाने जैसे दूरी बढाने वाले कार्य भी करते रहते हैं। यदि इनकी दूरी घटेगी और उसके कोई अन्य मार्ग उपलब्ध नही होगें तो बलात्कार बढेंगें ही जैसा कि अभी हो रहा है। यदि भूख जल्दी लगेगी और भोजन देर से मिलेगा तो छिपकर होटल जाने को नही रोका जा सकता। वर्तमान व्यवस्था दोनो काम एक साथ कर रही है और होटल जाने वालों को मृत्यु दण्ड तक की मॉग कर रही है। दूरी घटाना है या बढाना यह परिवार की स्वतंत्रता होना चाहिए न कि कोई कानून।

{20} प्राचीन समय में महिलाओं को विशेषाधिकार प्राप्त थे समान अधिकार नही। नई व्यवस्था में महिलाओं को समान अधिकार दे रहें हैं। ऐसी स्थितियों में उन्हें विशेषाधिकार छोडने होगें। कुछ आधुनिक महिलाएँ समान अधिकार की बात करती हैं और विशेषाधिकार की भी। ऐसी महिलाएँ समाज तोडने का काम करती है।

{21} परिवार में मॉ–बेटा, भाई–बहन, पति–पत्नी, बाप–बेटी के रिश्तों में किसी प्रकार की दरार बहुत नुकसान करेगी। यदि इन संबंध में अविश्वास की खाई बढी तो लाभ कम होगा और नुकसान ज्यादा। पश्चिमी जगत में परिवार व्यवस्था को मान्यता नही है। भारत में हजारों वर्षों से परिवार व्यवस्था सकियता पूर्वक काम कर रही है। बीच–बीच में सती प्रथा, दहेज, सम्पति के अधिकार, तलाक जैसी विकृतियॉ भी आती–जाती रहीं किन्तु परिवार व्यवस्था चलती रही। वर्तमान समय में महिला सशक्तिकरण की पश्चिम की आवाज कुछ आधुनिक महिलाओं और राजनेताओं के मिले–जुले प्रयास से परिवार व्यवस्था के टूटने का खतरा हो गया है। ये लोग ना सुधार चाहतें हैं ना ही कोई संशोधन। ये तो सिर्फ स्त्री–पुरूष के बीच वर्ग विद्वेष फैलाकर परिवार व्यवस्था को तोडना चाहते हैं। देखा जा रहा है कि अधिकांश आधुनिक महिलाएँ दिन–रात, महिला–पुरूष अविश्वास बढाने के कार्य में लगीं हैं। अच्छी–अच्छी विद्वान महिलाएँ भी आजकल सारी चर्चाएं छोडकर महिला शोषण या जागरण के विषय में ही कुछ भी अनाप–सनाप लिखती और बोलती हैं। अनेक पुरूष विद्वान भी नासमझी में इनकी हॉ में हॉ मिलाते रहते हैं। यदि किसी पुरूष ने इन आधुनिक महिलाओं की बात के विरूद्ध कोई बात बोल दी, तो ये आधुनिक महिलाएँ इतने जोर से चिल्लाना शुरू कर देतीं हैं जैसे कि कोई इनके साथ बलात्कार हो रहा हो। वास्तविकता यह है कि किसी प्रकार का शोषण कहीं अपराध होता ही नही, तो महिलाओं का शोषण अपराध कैसे हुआ ? इन सब बातों के परिपेक्ष्य में अंक 286 में लिखी महिलाओं संबंधी बातों को पढा जाना चाहिए। अभी मुलायम सिंह ने महिलाओं के विषय मे एक सही बात कही है। आप जानते होगे कि दो प्रतिशत संगठित तथा आधुनिक महिलाओ ने ऐसा आसमान सर पर उठाया जैसे कि वही शत प्रतिशत महिलाओ का प्रतिनिधित्व करती है। वैसे तो सर्वविदित है कि मुलायम सिंह ने ही समाज तोडक महिला आरक्षण बिल तथा हरिजन आदिवासी नौकरी प्रोन्नति बिल को रोक कर रखा हैं । मुलायम सिंह बधाई के पात्र है।

{22} कोई भी नवजात चाहे लडका हो या लडकी उस परिवार का सदस्य होगा, जिस परिवार की सदस्य बच्चे की मॉ है, पिता से बच्चे की पहचान नही होगी।

{23} परिवार के प्रत्येक अच्छे–बुरे कार्य के परिणाम में परिवार के सभी सदस्य का समान अधिकार तथा दायित्व होगा।

{24} सम्पति का विभाजन, मुखिया का चुनाव, अपराधों के परिणाम में सहभागिता या किसी निर्णय की सहभागिता में उम्र, लिंग या योग्यता का कोई भेद नही होगा।

(4) आर्थिक स्थिति– श्रम शोषण के लिये चार प्रकार के हथियार प्रयोग मे लाये जाते हैं–1. जातीय आरक्षण 2. शिक्षित बेरोजगारी 3. कृत्रिम उर्जा मूल्य नियंत्रण 4. न्यूनतम श्रम मूल्य वृद्धि की सरकारी घोषणाएँ।

मै जानता हूँ कि श्रम शोषण के लिये देश भर के बुद्धिजीवी इन चारो शस्त्रों का प्रयोग करते है। इनमे साम्यवादी तथा समाजवादी बुद्धिजीवी सबसे आगे रहते है। ये लोग श्रम जीवियों के साथ छल करते है, उन्हे धोखे मे रखते है, उन्हें सच्चाई को समझने नही देते। यहां तक कि ये बुद्धिजीवी इतना तक झूठ बोलते है, कि ये चार प्रकार की योजनाएँ श्रमजीवियों के हित मे है। जबकि ये चारेा योजनाएँ श्रम का शोषण करती हैं। एक शिक्षित व्यक्ति बेरोजगार कैसे हो सकता है ? जबकि उसके पास श्रमजीवी की अपेक्षा अधिक योग्यता है। एक श्रमजीवी न्यूनतम घोषित श्रम मूल्य से भी कम मे काम करने को मजबूर है। दूसरी ओर एक शिक्षित व्यक्ति डॉक्टर या इंजीनियर बनकर कई गुना अधिक वेतन पर काम करने को तैयार नही है। उचित रोजगार की प्रतीक्षा मे बेरोजगार का नाम बेरोजगार की सूची मे है और न्यूनतम घोषित श्रम मूल्य से भी नीचे पर काम करने को मजबूर व्यक्ति का नाम बेरोजगारों की सूची मे शामिल नही है।

{१} जातीय आरक्षण ने तो श्रम शोषण के लिये बहुत षडयंत्र किया। प्राचीन समय मे श्रमजीवी को ही शूद्र कहा जाता था। बाद के काल खंड मे सवर्ण धूर्तो ने शूद्र को ही श्रमजीवी बना दिया। इस परिवर्तन के दुष्परिणाम हुए। स्वामी दयानंद, गांधी आदि इस आरक्षण को समाप्त कर रहे थे, किन्तु स्वार्थी अंम्बेडकर ने नेहरू के साथ मिलकर फिर से इस श्रम शोषण के सिद्धान्त को जीवित कर दिया, जिसके अनुसार शूद्र और अवर्ण ही पिछडा हुआ है, भले ही वह करोडो श्रमजीवियों से कितना ही आगे क्यो ना निकल गया हो। प्राचीन समय के 95 प्रतिशत तथाकथित शूद्र और अवर्ण आज भी श्रमजीवी ही है। इनका जीवन स्तर उपर उठने की चिंता अंम्बेडकर ने नही की। अम्बेडकर ने धूर्त सवर्णो के साथ समझौता करके शूद्र बुद्धिजीवियों और अवर्ण बुद्धिजीवियों को आरक्षण का लाभ दिला दिया और 95 प्रतिशत श्रमजीवी शूद्र और अवर्णो को अपने हाल पर जीने को

छोड दिया। आज सवर्ण अकेले मे भले ही अंम्बेडकर को गाली देता हो लेकिन सामूहिक रूप से बुद्धिजीवी अवर्णो के साथ मिलकर अंम्बेडकर को भगवान के समान मानते है। अम्बेडकर की आलोचना करने के लिए अनेक सवर्णो ने मेरी भी आलाचना की है। बुद्धिजीवी अवर्ण तो खुलकर गाली ही देते हैं।

{३} कृत्रिम उर्जा श्रम सहायक नही बल्कि श्रम की प्रतिस्पर्धी है। कृत्रिम उर्जा का सस्ता होना श्रम शोषण का सबसे बडा माध्यम है। हर बुद्धिजीवी कृत्रिम उर्जा मूल्यवृद्धि का इसलिये विरोध करता है कि इसके कारण श्रम की मांग और श्रम का मूल्य बढ जायेगा। परिणाम स्वरूप उसे या तो स्वयं काम करना होगा या महंगा श्रम खरीदने को मजबूर होना पडेगा। इन बुद्धिजीवियो मे भी कृत्रिम उर्जा मूल्य वृद्धि का विरोध करने मे साम्यवादी, समाजवादी सबसे आगे रहते हैं, क्योंकि इन्हें गुप्त रूप से बुद्धिजीवियों का हित चिंतन करना होता है। साम्यवादी तो यहां तक नीचे उतर जाते है कि वे कृत्रिम उर्जा मुल्य वृद्धि का विरोध करते–करते बिजली उत्पादन यूनिटों का भी इसलिये विरोध करने लगते हैं, कि कहीं भारत मे डीजल–पेट्रोल की बिक्री ना घट जाये। मुझे विश्वास है कि साम्यवादियों को अवश्य ही खाडी देशो से अनेक प्रकार की सहायता प्राप्त होते रहती है, और बदले मे ये लोग भारत में खाडी देशो के हितो की चिंता करते रहते है। ऐसी सहायता आर्थिक भी हो सकती है, और नही भी। किन्तु अमेरिका विरोध के नाम पर दोनो का भाईचारा जग प्रसिद्ध है।

{४} अर्थशास्त्र का सिद्धान्त है कि किसी वस्तु का मूल्य बढता है, तो उसकी मांग घटती है, और जब मांग घटती है तो उसका बाजार मूल्य घटता है। सरकारें बाजार मे श्रम मूल्य को बढने से रोकने के लिये कृत्रिम श्रम मूल्य वृद्धि कर देती है, जिसका परिणाम होता है कि श्रम की मांग रूपांतरित होकर कृत्रिम उर्जा की तरफ चली जाती है। आज पूरे भारत मे कृत्रिम उर्जा की मांग बहुत ज्यादा है क्योंकि एक ओर कृत्रिम उर्जा का मूल्य नही बढने दिया जाता है। सन् 1947 मे यदि रूपया एक रूपया के बराबर था तो आज उसका मूल्य 84 रूपये के बराबर हो गया है। कृत्रिम उर्जा का औसत मूल्य 125 गुना हुआ है, और श्रम का मूल्य सन् 1947 की अपेक्षा लगभग पौने दो सौ गुना बढा है तथा श्रमजीवियो के उपयोग की वस्तुए सस्ती हुई हैं। इस तरह देखने से यह स्पष्ट होता है कि कृत्रिम उर्जा के मूल्य की अपेक्षा श्रम का मूल्य अधिक बढा है। दूसरी ओर सन् 1947 मे श्रम मूल्य और बुद्धि के मूल्य मे दो गुने का फर्क था, तो आज श्रमजीवी की अपेक्षा बुद्धिजीवी के जीवन स्तर में आठ गुने का अंतर आ गया है। यह अंतर ही स्पष्ट करता है कि कृत्रिम उर्जा ने बुद्धिजीवियों की अधिक और श्रमजीवियों की कम मदद की। आज तक ज्ञानतत्व के किसी बुद्धिजीवी पाठक ने मेरे इस प्रश्न का कोई उत्तर देना उचित नही समझा, कि भारत मे साइकिल पर चार सौ रूपया टैक्स और रसोई गैस पर छूट क्यों मिलती हैं ? मैने दिल्ली की एक सभा मे जब यह प्रश्न उठा दिया तो बाद मे सभा के आयोजक महोदय ने ही मुझे समझाया कि यदि आप ऐसे प्रश्न उठायेगें तो यहां के लोग नाराज हो जायेगें। अरविन्द केजरीवाल को भी मैंने यह बात समझाने का प्रयास किया तो उन्होने भी समझते हुए भी न समझने की अपनी मजबूरी बता दी। मुझे अपने बुद्धिजीवी मित्रों से अपने इस सुझाव पर उत्तर चाहिए, कि यदि भारत की आधी आबादी को दो हजार मूल रूपया मासिक का जीवन भत्ता देकर तथा रोटी कपडा मकान तथा कृषि उपज, वनोपज जैसी ग्रामीण उत्पादन और उपभोक्ता वस्तुओं पर से सब प्रकार के टैक्स हटा लिये जाये और सारा खर्च कृत्रिम उर्जा की मूल्य वृद्धि करके वसूल लिये जाये, तो क्या गरीब और अमीर की बीच की खाई कम नही हो जायेगी ? आशा है इन मुद्दो पर भी आप लोगो की समीक्षाएं मिलेगी।

भारत की सरकारी अर्थव्यवस्था और सामाजिक अर्थ व्यवस्था मे सन् 1991 के बाद काफी सुधार हुआ है। सन् 1991 के पूर्व हर प्रकार का सरकारीकरण खुली अर्थव्यवस्था मे बाधक था। 1991 के बाद बहुत धीरे–धीरे सरकार बाजार पर से नियंत्रण कम कर रही है। मै मानता हूँ कि इन आर्थिक सुधारो का लाभ श्रमजीवियों को कम बुद्धिजीवियों को अधिक और पूंजीपतियों को बहुत अधिक हुआ है। सन् 1991 के पहले न श्रमजीवियों को लाभ था न बुद्धिजीवियों को न पूंजीपतियों को सिर्फ सत्ता के दलाल ही सारा लाभ उठाते थे। यदि सन् 1991 के बाद निजीकरण की जगह समाजीकरण का का मार्ग पकडा होता तो यह नुकसानदेह नही होता। समाजीकरण का अर्थ होता है– पारिवारिक अर्थ ब्यवस्था पर परिवार का नियंत्रण, ग्रामीण अर्थव्यवस्था पर गांव का नियंत्रण। कुछ चुने हुए आर्थिक मुद्दो पर भी सरकार का नियंत्रण न होकर अर्थपालिका का नियंत्रण। सरकार आर्थिक मामलो में टैक्स लगाने और खर्च करने के लिये अर्थपालिका के समक्ष परतंत्र रहे। अर्थ यह है कि इस प्रकार के सुधार समाजीकरण के अंतर्गत आते है।

(5) रामजन्म भूमि विवाद–1.रामजन्म भूमि विवाद मुद्दे को संघ परिवार ने कभी सुलझने नही दिया। मुसलमानों ने कई बार दबकर इस विवाद को खतम करने की ईमानदार कोशिश की किन्तु संघ परिवार इस मुद्दे को हमेशा जीवित रखना चाहता था।

2. कॉग्रेंस पार्टी ने भी कई बार ऐसे ईमानदार प्रयास किये हैं किन्तु संघ परिवार ने उसमे भी रोडे अटकाएं हैं।

(9) संगठन–{१}संगठन हमेशा न्याय की अपेक्षा अपनत्व की तरफ अधिक झुकता है। जो व्यक्ति किसी संगठन का सदस्य है वह अपने संगठन की तरफ झुकता ही है। अच्छा हो कि धर्म, जाति, क्षेत्रियता, भाषा, उम्र, लिंग, गरीब–अमीर, उत्पादक–उपभोक्ता, के नाम पर बने संगठनों से दूर होकर परिवार, गॉव, जिला, प्रदेश, राष्ट्र, समाज के नाम पर बनने वाले संगठनों में सक्रिय होना चाहिए।

{२} किसी संस्था में सक्रिय होना बहुत अच्छा कार्य है।

{३} संस्था और संगठन में आसमान, जमीन का फर्क होता है–संस्था सिर्फ कर्तव्य तक सीमित होती है, जबकि संगठन अधिकारों के लिए संघर्ष करता है।

{४} संगठन हमेशा, असंगठितों का शोषण करता है चाहे वह किसी भी आधार पर क्यों न बना हो।

{५} अधिकांश मुसलमान संगठन से जुडे होते है। धर्म से बहुत कम । अधिकांश हिन्दू धर्म से जुडे होते है। संगठन से बहुत कम । संघ परिवार को छोडकर कोई हिन्दू किसी धार्मिक संगठन से नही जुडता।

(12)तानाशाही– {१} आयातित लोकतंत्र शासन पद्धति में आता है, जीवन पद्धति में नही। ऐसा लोकतंत्र भारत सहित दक्षिण एशिया के सभी देशों में है।

{२} आयातित लोकतंत्र निरन्तर अव्यवस्था की ओर बढता है, इसमें न्यायपालिका, विधायिका और कार्यपालिका आपस में सहयोगी की भूमिका में न होकर प्रतिस्पर्धी हो जाते हैं।

{३} आयातित लोकतंत्र में संगठन प्रमुख हो जाते हैं, असंगठित गौण। सरकारें संगठनों पर निर्भर हो जाती है। यहां तक कि सरकारे संगठनो के दबाव मे अल्प संख्यक आयोग, आदिवासी आयोग, महिला आयोग, जैसी समाज तोडक शासकीय इकाईया बनाते रहती है।

{4} संगठन, असंगठितों का शोषण करते हैं और सरकारें उनकी सहायता करती हैं।

{5} आयातित लोकतंत्र में सरकारें जनहित की जगह जनप्रिय कार्य करने लगती है, जिसका परिणाम होता है, कमजोर और मजबूत के बीच असंतुलन, शरीफ और बदमाश के बीच असंतुलन, गरीब–अमीर के बीच असंतुलन, श्रमजीवी–बुद्धिजीवी के बीच असंतुलन।

{6} ऐसे लोकतंत्र में सरकारें समाज को अधिक से अधिक गुलाम मानसिकता का बना देती है।

{7} उपर लिखी बातों का परिणाम होता है, समाज में हिंसा का भी विस्तार तथा कायरता का भी विस्तार।

{8} हर मजबूत हिंसा को उचित मानता है और हर कमजोर कायरता को ।

{9} आज भारत में भी ऐसा ही हो रहा है। अव्यवस्था बढ रही है और जब अव्यवस्था बढती है तो उसके दो ही समाधान होते हैं, या तो तानाशाही या लोकस्वराज्य।

{10} देश की जनता ने अन्ना ऑदोलन के समय लोकस्वराज्य का प्रयोग करना चाहा था, जिसे अरविन्द केजरीवाल की जल्दबाजी ने असफल कर दिया। अब देश की जनता मोदी के रूप में तानाशाही को पसंद कर रही है। परिणाम क्या होगा पता नही। वैसे सोनिया गांधी द्वारा अपने पारिवारिक स्वार्थ मे पडकर मनमोहन सिंह को लगातार कमजोर करते जाना भी मोदी की वापसी मे सहायक होता दिखता है।

{11} समाधान में सक्रिय तीन प्रकार के लोग होते हैं–1. संगठन प्रधान 2. आचरण प्रधान 3. विचार प्रधान। संगठन प्रधान समाधान तामसी होता है अच्छी दिशा में भी जा सकता है, और बुरी दिशा में भी। आचरण या चरित्र प्रधान समाधान अच्छी ही दिशा में जाएगा किन्तु न समस्याऍ पैदा करेगा न समाधान करेगा। विचार प्रधान समाधान केवल अकेला ऐसा माध्यम है जो समस्यों का समाधान कर सकता है। संघ परिवार, अन्ना हजारे, गायत्री परिवार, बाबा रामदेव आदि चरित्र पर जोर देते हैं। विचार प्रधान समाधान दिशा देने का अकेला प्रयत्न ज्ञानतत्व ही कर रहा है।

(15) समान नागरिक संहिता– प्रत्येक व्यक्ति की दो भूमिकाऍ होती है–1. व्यक्ति के रूप में 2. नागरिक के रूप में। व्यक्ति के रूप में वह समाज का अंग होता है और नागरिक के रूप में राष्ट्र का। सरकार को चाहिए कि वह व्यक्ति और नागरिक के बीच एक पुल का काम करे, किन्तु सरकार ने दोनो को अलग–अलग करके दूरी बढा दी। व्यक्ति की भूमिका लगातार कमजोर की गई और नागरिक की भूमिका बढायी गयी। व्यक्ति वह होता है जिसे मौलिक अधिकार भी प्राप्त होते हैं तथा सामाजिक अधिकार भी प्राप्त होता है किन्तु संवैधानिक अधिकार नहीं। नागरिक वह होता है जिसे संवैधानिक अधिकार प्राप्त होता है। जब एक ही व्यक्ति दोनो स्थिति में होते है तब उसे तीनो अधिकार प्राप्त होते हैं किन्तु जब कोई विदेशी भारत में आता है तो उसे संवैधानिक अधिकार प्राप्त नही होते, सिर्फ मूल अधिकार होते हैं या सामाजिक अधिकार।

बडे दुःख की बात है कि आज तक भारत में मूल अधिकारों की कोई स्पष्ट समझ नही बन पायी। मैंने पूर्व मानव संसाधन मंत्री मुरली मनोहर जोशी तक को यह कहते हुए सुना है कि भोजन का अधिकार हमारा मूल अधिकार है। अनेक नासमझ तो यहॉ तक कह देते हैं कि हमारा मतदान का अधिकार भी मूल अधिकार है। मुस्लिम संगठन तो न समान नागरिक संहिता को समझते हैं न मूल अधिकार को। वे तो केवल ईस्लामिक विस्तारवाद को ही सब कुछ समझते हैं किन्तु संघ परिवार तो भारतीय संस्कृति की उपज है, वह भी यदि समाज से राष्ट्र को उपर मानें, परिवार व्यवस्था को संवैधानिक मान्यता दिलाने के नाम पर चुप रहे। समान नागरिक संहिता के स्थान पर आचार संहिता थोपने का प्रयास करे तो हम संघ परिवार को अधिक दोष दें या मुसलमानों को।

(19) फॉसी की सजा–{1} मानवीय फॉसी का मतलब यह है कि अपराधी को यह विकल्प दिया जाए कि वह फॉसी के दिन से अंधा होकर जमानत पर तब तक जीवित रहने का न्यायालय से या राष्ट्रपति से निवेदन कर सके, जब तक वह जीवित रहना चाहे।

{2} न्यायालय या राष्ट्रपति उसके निवेदन पर यदि संतुष्ट हो तो उसे जीवित रहने के लिए जमानत दे सकता है।

(20) भूत–प्रेत–मैंने यह निष्कर्ष निकाला है कि अब भी प्रकृति के ऐसे रहस्य है, जिन्हें विज्ञान नही सुलझा सका है। ऐसे अनसुलझे रहस्य ही भूत–प्रेत, जादू–टोना, तंत्र–मंत्र माने जाते हैं। मेरे विचार से न तो भूत–प्रेत को स्वीकार करना चाहिए न ही अस्वीकार। स्वीकार करने से भूत–प्रेत के नाम पर अंधविश्वास फैलाने वालों को लाभ होता है और अस्वीकार करने से अनेक अनसुलझे मामलों में उलझना पडता है। वैसे भूत–प्रेत के नाम पर फैलने वाला अंधविश्वास ज्यादा खतरनाक है।

(21)हडताल,चक्का–जाम– संगठित गिरोहों द्वारा असंगठित व्यक्तियों तथा व्यवस्था को ब्लैकमेल करने के लिए ही हडताल, चक्का–जाम या घेराव जैसे माध्यमों का सहारा लिया जाता है। जे. पी. आंदोलन या अन्ना आंदोलन के अतिरिक्त कोई ऐसा आंदोलन नही हुआ, जिसका उद्देश्य कमजारों का शोषण न हो। ऐसे आंदोलन किसानो के भी होते हैं, कर्मचारियों के भी, मजदूरों के भी तथा अन्य प्रकार के भी। मेरे विचार से सबका उद्देश्य शोषण करने के अतिरिक्त कुछ नही है।

(22) गॉधी हत्या–गॉधी हत्या सभी हिन्दुओं के लिए एक कलंक है। यदि इसका औचित्य सिद्ध करने में क्रॉन्तिकारियों के कार्यो के साथ तुलना करने का प्रयास तो और भी खतरनाक है। यदि भगत सिंह या अन्य क्रॉन्तिकारी होते और हत्या करनी होती तो जिन्ना की करते, गॉधी की नही। गॉधी हत्या एक कायरतापूर्ण कलंकित कार्य था, जो किसी हिन्दू विरोधी धारणा से प्रेरित था। गॉधी हत्या का अप्रत्यक्ष समर्थन करने वालो को भी अपने पास नही बैठने देना चाहिए, क्योंकि ऐसे लोग अविश्वसनीय होते हैं। सॉम्प्रादायिक मुसलमानों से भी ज्यादा खतरनाक होते हैं। मुसलमान को अपने नाम से पहचाना जाता है किन्तु वे तो पहचाने भी नही जाते। ऐसे लोग तर्क से माने तो ठीक अन्यथा इनका किनारे करने योग्य है।

(23) नक्सलवाद–{1} कभी–कभी प्रशासन किसी अच्छे व्यक्ति को प्रताडित करने के लिए उसे नक्सलवादी घोषित कर देते हैं, जैसा कि मेरे साथ भी हुआ है, किन्तु ऐसे कार्य कभी–कभी ही होते हैं, सामान्यतया नही।

{2}नक्सलवादी का समर्थन किसी भी रूप में प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से भी नही करना चाहिए। नक्सलवाद को व्यवस्था परिवर्तन के साथ जोडने वाले भ्रम में है। ऐसे भ्रमित लोगो में गॉधीवादी सबसे आगे रहते हैं।

(24) शिक्षा–{1}शिक्षा और ज्ञान अलग–अलग होता है। शिक्षा बढ रही है और ज्ञान घट रहा है। शिक्षा स्कूलों में ही दी जा सकती है, किन्तु ज्ञान स्कूलों से नही दिया जा सकता। वह तो परिवार व्यवस्था, समाज व्यवस्था से प्राप्त होता है, जिन दोनो को तोड दिया गया। पुराने जमाने में प्राप्त ज्ञान और शिक्षा एक ही जगह गुरूकुलों में मिलती थी। वर्तमान शिक्षा प्रणाली क्षमता का विस्तार करती है, ज्ञान का नही।

{2} सबसे दुःखद यह है कि शिक्षा पर सरकारें अरबों–खरबों खर्च करती है और यह सारा धन श्रमजीवी, ग्रामीण, अशिक्षित कृषक आदि से भारी टैक्स लगाकर वसूल करती है। ये शिक्षा की वकालत करने वाले कितने निर्दयी हैं, कि इन्हें अशिक्षितों पर लगाये जाने वाले टैक्स की चिन्ता कभी नही होती। इनका तो सोचना है कि कोई मरे या जीये, गरीबों का खून भले ही चूस लिया जाए लेकिन इनका शिक्षा का बजट जरूर बढते रहना चाहिए। मेरा शिक्षा के वकीलों से निवेदन है कि मेरे प्रश्न का उत्तर दें।

{3} शिक्षा पर होने वाला खर्च शिक्षा प्राप्त कर रहे विद्यार्थियों से लिया जाए या अशिक्षित श्रमजीवीयों से यह प्रश्न भी महत्वपूर्ण है। मैं जानता हूॅ कि आज का शिक्षित या शिक्षा विस्तार का समर्थक वर्ग कभी नही जानना चाहता कि अशिक्षित श्रमजीवीयों से कितने प्रकार के किन–किन वस्तुओं पर टैक्स वसूला जाता है।

(28) भारत में राजनैतिक पद प्राप्त करने के लिए आर्थिक समानता को एक हथियार बनाकर प्रयोग किया जाता है। मेरे कई निकट के मित्र भी ऐसा करते हैं। कानून के माध्यम से आर्थिक समानता का प्रयत्न अधिकारों की असमानता को बढाता है। आर्थिक असमानता की यह कोशिश भ्रष्टाचार भी बढाती है, किन्तु हमारे नेता भ्रष्टाचार अथवा सत्ता के केन्द्रियकरण की लाश पर अपनी सत्ता की रोटी सेकने के लिए आर्थिक समानता शब्द का सहारा लेते हैं। आज तक आर्थिक असमानता के विरूद्ध कोई गंभीर प्रयास नही हुआ, क्योंकि आर्थिक असमानता कम हो जाने से इनकी दुकानदारी बन्द हो सकती है।

(30) शोषण–आजकल यौन शोषण के नाम से एक नये प्रकार की बात फैलाई जा रही है। बलात्कार अपराध होता है। मैं नही समझता कि यौन शोषण शब्द का उद्देश्य क्या है ?

ज्ञानतत्व अंक 288 में मैंने श्रीराम शर्मा आचार्य, गायत्री परिवार द्वारा 20–25 वर्ष पूर्व लिखे गये विचार छापे थे तथा यह लिखा था कि इनका उत्तर अगले अंक में देगें। उसकी समीक्षा इस अंक में दी जा रही है।

आपने पहले पैराग्राफ में परिस्थितियों का जो चित्रण किया है वह बिलकुल ठीक है। सच बात यह है कि सत्ता समाज के हर क्षेत्र में अपना प्रभाव डाल रही है, और समाज को अपना गुलाम बनाती जा रही है। आपने लिखा है कि ऐसी परिस्थितियों में सत्ता में चरित्रवान लागों को जाना चाहिए। यही निष्कर्ष अन्ना हजारे जी ने भी निकाला था। रामदेव जी भी यही बोल रहें हैं। अनेक गॉधीवादी भी यही बोल रहें हैं तथा अनेक समाज सुधारक भी। किन्तु मैं आप सबके द्वारा प्रस्तुत समस्या से सहमत होते हुए भी समाधान से सहमत नही हूॅ। यदि परिवार के किसी सदस्य का पैर टूट जाए और ठीक होने का कोई माध्यम न हो तो बैसाखी का सहारा लेना मजबूरी है। किन्तु यदि पैर ठीक होना संभव है तो बैसाखी की जरूरत नही। पैर को ठीक कराना चाहिए। श्रीराम शर्मा जी सहित सब लोगो का सुझाव समाधान न होकर मजबूरी में स्वीकार करने योग्य है। समस्याऍ चरित्र के अभाव में नही बढी हैं, बल्कि सत्ता के केन्द्रियकरण के कारण चरित्र लगातार गिरता चला गया। जब भारत स्वतंत्र हुआ तो सत्ता में आज की अपेक्षा कुछ कई गुना अधिक चरित्रवान लोग थे। फिर भी लगातार आज तक चरित्र गिरता गया और गिरता जा रहा है, तो उसका कारण चरित्र का अभाव नही होकर, सत्ता के केन्द्रियकरण की नीतियों में खोजा जाना चाहिए। गॉधी ने हमेशा नीतियों की चर्चा की और सत्ता के अकेन्द्रियकरण की बात की। गॉधी हिंसा और बलप्रयोग के बिलकुल विरूद्ध थे। आज के गॉधीवादी चरित्र की बातें करके राजनीति में चरित्र स्थापित भी करना चाहते हैं तो दूसरी ओर नक्सलवाद का अप्रत्यक्ष समर्थन भी करते हैं। मैंने सुना है कि आम आदमी पार्टी के नक्सलवादी

उम्मीदवार सोनी सौरी का चुनाव में समर्थन करने अच्छे–अच्छे गॉधीवादी भी आ रहें हैं। ब्रम्हदेव शर्मा, स्वामी अग्निवेश आदि तो आ ही चुके हैं। प्रश्न उठता है कि देशभर में चुनाव लडने वाले आम आदमी पार्टी के अन्य उम्मीदवारों के समर्थन में गॉधीवादी क्यों नही खडे हुए ? मेरा स्पष्ट मत है कि नीतियों का प्रभाव चरित्र पर पडता है और चरित्र का प्रभाव नीतियों के कार्यान्वयन पर। नीतियॉ विधायिका बनाती है और कार्यान्वयन कार्यपालिका करती है। इस आधार पर विधायिका के संबंध में नीतियों का महत्व अधिक है।

आपने लिखा है कि प्राचीन काल में संतो, ऋषियों, ब्राम्हणों का राज्य पर नियंत्रण होता था। दूसरी ओर आपने यह भी लिख दिया, यदि दुनिया का नेतृत्व गॉधी, ईसा, बुद्ध, सुकरात सरीखे उच्च चरित्रवान लोगो के हाथ रहा होता तो आज विश्व की यह दुर्गति नही होती। ये महापुरूष सत्ता से दूर थे इसलिए ही ये सत्ता का मार्गदर्शन करते रहे। प्राचीन काल में कभी किसी ब्राम्हण को राजा नही बनाया गया और यदि कोई राजा बना भी तो उसने रावण सरीखे कार्य किये। विधायिका की भूमिका ब्राम्हण के समान होनी चाहिए, किन्तु विधायिका ने राजा के समान अपनी भूमिका बना ली जो गलत है।

भारत में द्विस्तरीय व्यवस्था है–एक है संविधान और एक है संविधान के अंर्तगत कानून बनाने वाली विधायिका। संविधान पर समाज का नियंत्रण होता है और विधायिका पर संविधान का। विधायिका संविधान के अंर्तगत ही कानून बना सकती है। जब संविधान बनाते समय हमारे उच्च चरित्रवान लोगो ने विधायिका और संविधान को एक स्थान पर केन्द्रित कर दिया जिसका अर्थ हुआ कि उसी निर्वाचित संसद का संविधान पर भी नियंत्रण होगा और कानून पर भी तो एक प्रकार की संसद की तानाशाही स्थापित हो गई जिसका अर्थ हुआ, राजा, ब्राम्हणों के नियंत्रण के बाहर रहे। अब यदि हम सत्ता में उच्च चरित्र की कल्पना करते हैं, तो वह तब तक संभव नही है जब तक विधायिका के हाथ से संविधान संशोधन के असीम अधिकार किसी अन्य समकक्ष ईकाई के पास न चले जाए। इन्हीं परिस्थितियों को देखते हुए हम लोगो ने लोक संसद की बात की। इस प्रस्ताव पर चर्चा न करके आज चरित्र–चरित्र की जो आवाज उठ रही है वह टूटे पैर को ठीक करने की अपेक्षा बैसाखी का सहारा देने की सलाह है। मुझे उम्मीद है आप प्रशासन से जुडे लोगों को ईमानदारी की घिसी–पिटी सलाह देने की अपेक्षा उनके अधिकारों में कटौती करने का कोई मार्ग बताने का प्रयास करेगें। यदि लोक संसद की अपेक्षा कोई और भी व्यावहारिक सुझाव आता है तो हम उस पर भी विचार करने को तैयार हैं किन्तु हम मजबूरी में केन्द्रित सत्ता और चरित्रवान व्यक्ति के सुझाव को समाधान नही मानते।

आपने धर्मतंत्र को राजनीति से जोडने की बात कही है। वर्तमान समय में धर्म के दो अर्थ प्रचलित हैं–एक वह जो जीवन पद्धति से जुडा है और दूसरा वह जो संगठन से जुडा है। धर्म के दोनो स्वरूप बिलकुल ही अलग–अलग हैं। ईस्लाम अथवा संघ परिवार संगठन प्रधान धर्म है। ये धर्म नही है बल्कि वास्तविकता में संगठन है, जिन्होनें समाज को धोखा देने के लिए अपने को धर्म कहना शुरू किया। आमतौर पर हिन्दू जीवन पद्धति वाले धर्म पर विश्वास करता है किन्तु ये संगठन प्रधान धर्म हिन्दुओं का धर्म परिवर्तन करके उन्हें या तो संघ परिवार के साथ जोडतें हैं या ईसाई और मुसलमानों के साथ। यही कारण है कि आज धर्म का अर्थ बदल गया। इस संबंध में भी आपकी स्पष्ट धारणा होनी चाहिए कि इन संगठन प्रधान धर्मो से जीवन पद्धति से जुडा धर्म कैसे बचे। जिस तरह राजनीति ने समाज के हर क्षेत्र में प्रवेश करके समाज को एक प्रकार से गुलाम बना लिया है, लगभग उसी प्रकार ये संगठित धर्म भी लगातार समाज को संगठन पद्धति के आधार पर गुलाम बनाते जा रहे हैं। मैं मानता हूॅ कि संघ परिवार ने हिन्दुओं के ईस्लामीकरण से बचाव में बहुत अच्छा काम किया है। किन्तु इसका यह अर्थ नही कि संघ परिवार का कोई कार्य अच्छा होते हुए भी, कोई आदर्श कार्य है। किसी बलात्कार के खतरे से जूझ रही युवती को उस बलात्कारी से बचाकर ले जाने वाला यदि बलात्कारी है तो वह कोई आदर्श स्थिति नही है बल्कि मजबूरी है।

इन तथाकथित धर्मो का विवाद भी इसी अर्थ मे देखा जाना चाहिये। फिर भी यदि बलात्कारी आपस मे लडने लगे तो बहुत बुरी स्थिति नही है। गायत्री परिवार ने सक्रिय राजनीति से दूर रहकर अपने को बहुत बचाया । मै इस कार्य से सहमत हूॅ। फिर भी मै डॉ. श्रीराम शर्मा के लेख मे छुपी उस भावना से भी सहमत हूॅ जिसमें उन्होनें सत्ता पर समाज के अंकुश की बात कही है। जिस समय डॉ. श्री राम शर्मा आचार्य ने यह पुस्तक लिखी तब मैने भी लोक संसद की बात नही उठाई थी। यह लोक संसद की बात तो मैने भी अब अन्ना जी के आंदोलन के समय अच्छे मार्ग के रूप मे समझी। मैने पहली बार श्रीराम शर्मा जी के उत्तराधिकारी प्रणव पंडया जी को हरिद्वार जाकर यह बात समझाने की कोशिश की जो उन्होने न गंभीरता पूर्वक सुनी और ना समझी। मै महसूस करता हूॅ कि यदि श्रीराम शर्मा जी जीवित होते तो या तो स्वयं ही इस निष्कर्ष पर पहुंच जाते या मेरे सुझाव को तो अवश्य ही गंभीरता से लेते। गांधी के उत्तराधिकारियों मे मौलिक चिंतन की शक्ति अथवा इच्छा है न श्रीराम शर्मा जी के उत्तराधिकारियो में। उक्त संगठनो के उत्तराधिकारीयों से इस संबंध मे चर्चा ही व्यर्थ है। फिर भी गायत्री परिवार आज भी एक संगठन के रूप मे न होकर संस्था के रूप मे काम कर रहा है यह कोई साधारण बात नही है। जिस देश मे बाल ठाकरे और नरेन्द्र मोदी सरीखे लोग शेर के समान दहाड रहे हैं, उस देश मे गायत्री परिवार ने अब स्वयं को गाय की सीमाओ तक रोककर रखा यह भी कोई मामूली बात नही है। बाबा रामदेव थोडे ही दिनो मे शेर के समान प्रधानमंत्री बनने का सपना पालने लग गये थे। अब भी मजबूरी मे ही उन्होने कुछ समझौते किये है अन्यथा उनकी इच्छाए तो अब भी वही है। इस मामले मे प्रणव पंडया जी की प्रशंसा करता हूॅ कि उन्होने शेर बनने की इच्छा नही की। कुल मिलाकर श्री राम शर्मा जी के विचार उच्च कोटि के है, मार्गदर्शक है, और विचार करने योग्य है।

विशु गायकवाड, महाराष्ट्र। ईमेल से ।

1. **प्रश्न**– मैनें आपका ज्ञानतत्व पढा। पूरे ज्ञानतत्व में मुख्य रूप से डॉ. अम्बेडकर की निंदा की गई है। जबकि डॉ. अम्बेडकर ने अपने जीवन काल में संविधान निर्माण सहित अनेक अच्छे काम किये। उनकी तो प्रशंसा होनी चाहिए, किन्तु आप निंदा कर रहे हैं।

उत्तर– भारत का संविधान सभी समस्याओं की जड है। पहले तो मैं ऐसा मानता था कि इतना गंदा संविधान डॉ. अंम्बेडकर जैसा व्यक्ति नही बना सकता किन्तु जब अंम्बेडकर के समर्थको ने यह प्रमाणित कर दिया कि यह संविधान मुख्य रूप से अंम्बेडकर ने ही बनाया है, तब मेरी धारणा बदल गई और मैं उनकी आलोचना करने लगा। स्वतंत्रता के पूर्व सभी नेताओं ने समाज को आश्वासन दिया था कि भारत का लोकतंत्र, लोक नियंत्रित होगा किन्तु अंम्बेडकर ने गॉधी को धोखा देकर तथा अन्य लोगों को अंधेरे में रखकर संविधान का स्वरूप लोकनियुक्त तक सीमित कर दिया। आप ही बताइए कि यदि संविधान निर्माण में डॉ. अंम्बेडकर की मुख्य भूमिका थी तो मैं ऐसे व्यक्ति की निंदा क्यों न करूँ ? मैं यह महसूस करता हूँ कि समाज को तोडने के लिए आठों आधार लागू करने में अंम्बेडकर की मुख्य भूमिका थी। आज भारत में धर्म, जाति, भाषा, लिंग, उम्र, क्षेत्रियता, गरीब–अमीर, उत्पादक–उपभोक्ता के आधार पर जो वर्ग विद्वेश, वर्ग संघर्ष फैलाया जा रहा है उन सबकी जडें, भारतीय संविधान में ही हैं जो अंम्बेडकर की देन है। समाज में वर्ग तो दो ही हो सकते हैं–एक शरीफ और एक बदमाश। अन्य किसी आधार पर वर्ग को संवैधानिक मान्यता देकर उसे विशेषाधिकार दिये जाएगें तो उस वर्ग विशेष के धूर्त और अपराधी तत्व ही उस विशेषाधिकार का लाभ उठाएगें। जिसका सीधा सा अर्थ होगा शरीफ और धूर्त के बीच बढती खाई का और चौडा होना। न किसी वर्ग विशेष के सब लोग अच्छे होते है न सब बुरे। सभी वर्गो मे कुछ लोग मजबूत और चालाक होते है तथा कुछ कमजोर। मजबूत और चालाक लोग ऐसे विशेष अधिकारों का लाभ उठाते रहते है तथा शरीफ या कमजोर मजबूत बनने या किसी मजबूत से संरक्षण का प्रयत्न करते रहते है। आज आदिवासी, हरिजन, महिला आदि के नाम पर जो विशेषाधिकार की मॉग हो रही है, उन अधिकारों की मॉग में भी अधिकॉश बुद्धिजीवी शामिल रहते हैं और दुरूपयोग करने मे भी उनकी ही भूमिका प्रमुख रहती है। अंम्बेडकर ने बुद्धिजीवियों के पक्ष में खडे होकर श्रम शोषण का जो षडयंत्र किया है उसके लिए यह भी संभव है कि भारत की श्रमजीवी जनता भविष्य में अंम्बेडकर की मूर्ति बनाकर उसे फॉसी देने का काम न कर दे। मुझे विश्वास है कि अंम्बेडकर की नीतियों का लाभ उठा रहे तथाकथित बुद्धिजीवी और मिडिल क्लास के लोग श्रमजीवियों के विरूद्ध टिक नही पाएगें। बुद्धिजीवी अवर्णो ने, बुद्धिजीवी सवर्णों के साथ समझौता करके जाति आरक्षण का अपना मार्ग खोल लिया और श्रमजीवी, आदिवासी, दलित वर्ग जो नब्बे प्रतिशत से भी ज्यादा हैं उनका शोषण करने लगे। यह समझौता लम्बे समय तक नही चलेगा चाहे आप बुद्धिजीवी सवर्ण और अवर्ण मिलकर कितनी ही डॉ. अंम्बेडकर की जय–जय कार न कर लें। आपने जो टिप्पणी की है, उस टिप्पणी से महसूस होता है कि आप भी ऐसे ही बुद्धिजीवी वर्ग में शामिल होंगे, निश्चित ही आप श्रमजीवी नहीं होगें।

शिवदत्त बाघा– बॉदा, उ.प्र। ज्ञानतत्व कमॉक 7880।

2. प्रश्न–मेर करीब आग जल रही है, उसकी तपिश मैं महसूश कर रहा हूँ। रात के अंधेरे की पीडा और दिन के उजाले का सुखद अनुभव भी मुझे हो रहा है। इस सच्चाई को किसी भी तर्क द्वारा झुठलाने का कोई उपाय नही है। यही बात आम उपभोक्ताओं द्वारा भोगी जा रही महॅगाई पर लागू होती है। महॅगाई एक सच्चाई है। जिसके बढने–घटने का कोई नियम नही है। हर त्यौहार पर उससे संम्बन्धित वस्तुओं खाद्य पदार्थो के दाम बाजार में बढ जाते हैं। इसलिए कि बाजार नियम मुक्त हो चुका है। वह लुटेरों के हवाले हो चुका है। जहॉ तानाशाह व्यापारी बैठा है, जिसके उपर कोई नियंत्रक नही है। जो हाल इस देश में राजनीति का है यानि राजनीति जिस तरह से बेलगाम है और जातिवादी, वंशवादी संविधान राजनीति की इस मनमानी पर केवल परदा डालने का काम करती है, उसी भॅाति बाजार भी बेलगाम हो चुका है। वैसे आपकी इस बात में दम है कि पहले के मुकाबले वस्तुऍ सस्ती हुई है। बचपन में दो रूपये सेर छुहारा मिलता था। तब दस सेर गेंहू बेचकर एक सेर छुहारा खरीद लेते थे। अब चार किलो गेंहू बेचकर एक किलो छुहारा खरीद रहें है।। मतलब छुहारा सस्ता हुआ है। परन्तु इसके मुकाबले बादाम, घी महॅगें हुए है। पहले बीस सेर गेंहू बेचकर एक सेर बादाम अथवा देशी घी खरीद लेते थे। अब इसके लिए चालीस किलो गेंहू बेचना पडता है मतलब बदाम, घी महॅगा हुआ है। इससे स्पष्ट है कि सिस्टम पूरा का पूरा इडियट है, कहीं कोई नियम कायदा नही है ''अंधेर नगरी अबुद्ध राजा है''। पहले बाजार नियमों से बंधा था कृषि उपज पर आधारित था। सरकारी नौकरों की तनख्वाहें भी कृषि उपज पर आधारित थी। आज प्रायमरी के अध्यापक को 40–45 हजार रूपया मिल रहा है और स्कूल में ताला लटक रहा है। कारण कि पत्नी राजनीति में है नगर पंचायत या नगर पालिका अध्यक्ष है। आज का अर्थशास्त्र व अर्थशास्त्री जमीन पर नही हवा में उड रहें हैं। जो अर्थशास्त्र कभी मानव जीवन, समाज राष्ट्र के बेहतरी के लिए समर्पित था, आज लुटेरों की जेब भरने के लिए समर्पित है। अर्थशास्त्र, राजनीति शास्त्र, समाज शास्त्र सब गडबड हो गये है।

उत्तर– आपने अपने पत्र में महॅगाई के संबंध में स्वीकार किया है कि कुछ वस्तुऍ महॅगी हुई है और कुछ सस्ती। मेरा भी यही कथन है। आपने राजनैतिक और सरकारी व्यवस्था को बहुत ही भ्रष्ट बताया है, किन्तु मैं यह नही समझा कि आप ऐसी भ्रष्ट व्यवस्था के जिम्मे बाजार को भी क्यों करना चाहते हैं ? पहले भ्रष्टाचार घटे तब बाजार समर्पित हो या पहले ही बाजार को समर्पित कर दिया जाये? क्यों नही सरकार की जगह बाजार पर ग्राम–सभाओं या स्थानीय ईकाइयों का नियंत्रण हों। सन 1991 के पहले सरकार ने स्वतंत्रता के पूर्व की बाजार व्यवस्था को अपने हाथ में लिया। उसका परिणाम वर्तमान परिणामों से भी अधिक खराब हुआ। लाइसेंस कोटा परमिट ने लोगों के सामान्य जीवन को बेहाल कर दिया था। राशन की लाइन और टेलिफोन की अव्यवस्था जैसे उदाहरण स्पष्ट है। 1991 के बाद भी, 1991 के पूर्व का लाभ उठा रहे, राज्य आश्रित

साहित्यकार, मीडियाकर्मी, सरकारी कर्मचारी, बुद्धिजीवी, पूँजीपति सब पुराना सपना देख–देख कर नयी अर्थ व्यवस्था को कोसते रहतें हैं। किन्तु अब उनका सपना साकार होने वाला नही। सरकार नियंत्रित अर्थव्यवस्था कितनी घातक है इसका प्रमाण यही है कि जिसके पास सेना, पुलिस, न्याय है उसी इकाई को अर्थव्यवस्था भी सौंप देना कितना उचित है ? अच्छा तो यह होता कि स्वतंत्र बाजार पर सामाजिक अंकुश लगा दें तथा स्वतंत्र अर्थपालिका की मॉग करके तानाशाह बनती जा रही राज्य व्यवस्था के पंख कतरने के कार्य की आवाज उठे। आशा है कि आप स्वतंत्र बाजार और स्वतंत्र अर्थपालिका के पक्ष में कुछ मुखर होगें।

रामचन्द्र प्रसाद चौरसिया, पीपराइच जिला–गोरखपुर, उ.प्र.। ज्ञानतत्व क. 4782।

3. प्रश्न– आप द्वारा भेजा हुआ पाक्षिक ज्ञानतत्व नियमित रूप से प्राप्त होते रहता है। उसमें पढने से यह ज्ञात हुआ कि संसदीय व्यवस्था में हमारा भारतीय संविधान, संसद रूपी जेल में बन्द है। इसको छुडाने के लिए जनता को आगे आकर जनप्रतिनिधि चुनते समय योग्य प्रतिनिधि को चुनना है। अयोग्य को ठुकरा देना ही जनता का पुनीत कर्तव्य है। वैसे आपके ज्ञानतत्व पाक्षिक को पढने से इसमे भारतीय नागरिकों की पुनित कर्तव्य है। योग्य, कर्मठ प्रत्याशी को चुनकर ही संसद और विधानसभाओं में भेजा जाए। इस वर्ष 2014 में लोकसभा का चुनाव होने जा रहा है जिसमें अच्छे दल के योग्य प्रत्याशी का चयन करके संसद में भेजना ही हम लोगों का कर्तव्य है, जिसमें भारतीय संविधान को जेलखाने से मुक्ति दिलाया जा सके।

उत्तर–आपने लिखा है कि अच्छे लोगो को संसद में भेजा जाए। जिस समय इस संविधान को जेल में बन्द किया गया उस समय संसद में अधिकांश अच्छे ही लोग थे। डॉ. अंम्बेडकर, राजेन्द्र प्रसाद, पंडित नेहरू, सरदार पटेल, श्यामाप्रसाद मुखर्जी, डॉ. लोहिया आदि के संसद में रहते हुए हमारा संविधान जेलों में बन्द हुआ। अब अच्छे लोगो का चुनाव जीतना भी संभव नही है और यदि जीत भी जाएं तो वे संविधान को अपनी जेल से मुक्त कर देगें ऐसा विश्वास नही है। यही संभव है कि कोई दल सिर्फ इस आधार पर चुनाव लडें कि हम बहुमत मे आने पर लोक संसद बनाकर इस संविधान को स्वतंत्र कर देगें। तब शायद ऐसा हो सके।

बजरंग मुनि जी के लेख पर प्रतिकिया–एक हिन्दू महासभाई कार्यकर्ता।

भविष्य में जब हिन्दू का इतिहास निष्पक्ष भाव से लिखा जाएगा, तो गॉधी व नेहरू का नाम काले अक्षरों से लिखा जाएगा क्योंकि इनकी गलत सोच एवं मानसिकता के कारण साढे चार लाख वर्ग मील भूमि, 1947 में पाकिस्तान और बंगला देश को देने के बाद भी खंडित भारत में मुस्लिम समस्या ज्यों की त्यों है। इन दोनो ने ही जम्मू–कश्मीर के विलय को विवादास्पद बनाया। यदि देश नेहरू, गॉधी की नीतियों पर चलता रहा तो 2201 की जनगणना में खंडित भारत की जनसंख्या में हिन्दू का प्रतिशत 50 से कम होगा और सत्ता मुस्लिम, ईसाई गठजोड के पास होगी जिसमें मुस्लिम प्रधानमंत्री होगा और ईसाई राष्ट्रपति। तब नासमझ भोला हिन्दू चूहों की भॉति, डरकर छिपकर रहेगा और मुस्लिम, ईसाई बिल्लियों की भॉति आकामक होकर रहेगें।

उत्तर– आपने अपना नाम पता न देकर एक हिन्दू महासभाई कार्यकर्ता के रूप में अपनी पहचान बताई, यह गुप्तता मेरी समझ में नही आयी। आप जिस बात से चिंतित हैं उस चिंता को मैं भी समझ सकता हूँ। मैं समझता हूँ कि भारत में ईस्लाम सॉम्प्रदायिक विस्तारवाद के लिए निरंतर प्रयत्नशील है और उस दिशा में सफल भी हो रहा है। मैं यह भी समझता हूँ कि संघ परिवार और हिन्दू महासभा ईस्लाम और ईसाइत की बाढ को रोकने का भरसक ईमानदार प्रयास कर रहे है किन्तु मैने यह भी महसूस किया है कि स्वतंत्रता के बाद निरंतर चरित्र पतन हुआ है। मुसलमानों की आबादी कुल आबादी में लगभग दो प्रतिशत बढी है, और हिन्दुओं की घटी है। इस बढने घटने में लगभग 67 वर्ष बीत गये। मैं यह भी मानता हूँ कि मुसलमानों की बढती जनसंख्या में पाकिस्तान और बंगलादेश से गुप्त रूप से भारत मे आकर रहने वाले मुसलमानो की संख्या भी शामिल है। किन्तु इसके साथ ही मैं यह भी मानता हूँ कि संघ परिवार और हिन्दू महासभा द्वारा हिन्दुओं के बहुमत का लाभ उठाकर सत्ता संघर्ष में शामिल होना, इस समस्या का प्रमुख कारण है। मैं छोटे–छोटे कॉग्रेसी से भी बात करता हूँ तो वह अकेले मे इस समस्या को ठीक समझते हुए बात करता है, किन्तु जब संघ परिवार और हिन्दू महासभा जैसे धूर्त राजनैतिक संगठनों की बारी आती है, तब उसकी आवाज बदल जाती है। दूसरी बात यह भी है कि हिन्दुओं के अल्पसंख्यक होने में तो 67 वर्ष लग गये तथा भविष्य में 85 वर्ष और लग जाएगें। किन्तु शरीफ लोग अभी से अल्पसंख्यक हो गये हैं और भविष्य में अपराधी तत्वों से शराफत की सुरक्षा कैसे होगी ? यह अधिक चिंता का विषय है। गॉधी जैसे कट्टर हिन्दू महापुरूष जिसने अंम्बेडकर को भी मुसलमान बनने से रोका था, उस महापुरूष की निंदा करके आपने कोई हिन्दुत्व का प्रमाण नही दिया। ऐसा लगता है कि आप हिन्दुत्व को छोडकर हिन्दु महासभा जैसे संगठन के सदस्य हो गये हैं, जिसका अर्थ है कि आप स्वतंत्रता पूर्वक सोचने लिखने का अधिकार छोड चुके हैं। किसी सभा में मैने जब भारत में पाकिस्तान और बंगलादेश को मिलने के पक्ष में कहा था तो उस सभा में मेरे विरोध करने वाले अधिकांश जनसंघी लोग ही थे। उनका मानना था कि यदि पाकिस्तान और बंगलादेश को भारत में मिला दिया जाएगा तो राजनैतिक दृष्टि से जन–संघ का बहुत नुकसान होगा और मुस्लिम ताकतें और मजबूत हों जायेगी। संघ परिवार और हिन्दू महासभा के लोग अच्छी तरह जानते हैं कि जब ऐसा नही होने वाला है तो ऐसी मॉग करने में कहीं कुछ होने वाला नही है। भारत मे पाकिस्तान और बंगलादेश मुसलमानो को दे देने के बाद भी मुस्लिम समस्या ज्यों की त्यों बनी हुई है। इस समस्या को बढाने का काम उस विचारधारा ने किया जो यह मानता था कि गॉधी हत्या के बाद गृह युद्ध हो जाएगा और भारत को हिन्दू राष्ट्र बना देगें। ऐसे लोगों के सपने चूर करने के राजनैतिक प्रयत्नो में ईस्लामिक सॉम्प्रदायिकता बढती चली गयी, और

इसका मुख्य कारण संघ परिवार और हिन्दू महासभा की सॉम्प्रदायिक राजनीति में खोजा जाना चाहिए। अब भी समय है कि आप लोग अपने राजनैतिक उद्देश्यों को छोड दें और शुद्ध सामाजिक स्वरूप ले लें, तो संभव है कि भारत ईस्लामिस्तान बनने से बच जाएगा, और ना समझ भोला हिन्दू पाकिस्तान की तरह चूहों की भॉति डर–छिपकर रहने को मजबूर नही हों।

सूचना

ज्ञानतत्व अंक 286 पर अनेक प्रतिक्रियाऍ प्राप्त हुई हैं, जिनमे–एम एस सिंगला –अजमेर, राजस्थान, डी के ओझा–चेन्ई, रामकृष्ण जखेटिया–जयपुर, राज., महावीर त्यागी–पानीपत, हरियाणा, आदि की प्रमुख है। कमर वहीद नकवी जी ने भी मुलायम सिंह के कथन को आधार बनाकर मेरे महिलाओं संबंधी विचारों की आलोचना की है। इन सबको सम्मिलित करते हुए, अगले एक महीने बाद अंक 292 में मैं विस्तृत उत्तर दूंगा। तब तक अन्य और पाठकों की प्रतिक्रियाऍ भी प्राप्त हो जायेंगी तो हमें उत्तर देने में सुविधा होगी।